अप्रैल, 2015 ■ मूल्य : 30 रुपए

वर्तमान साहित्य

साहित्य, कला और सोच की पत्रिका

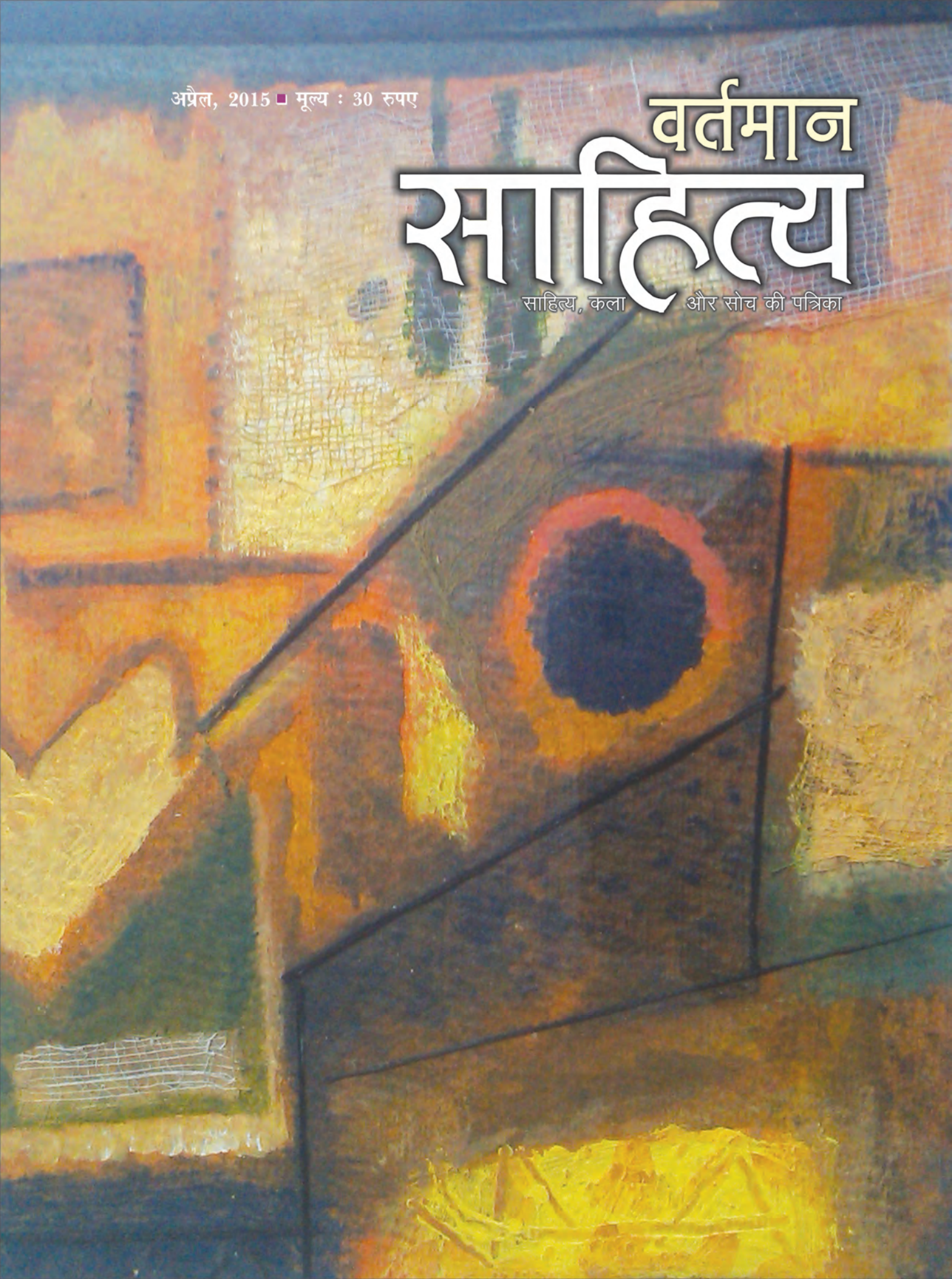

April 1-40_ram1.qxd 3/31/2015 4:59 PM Page 1

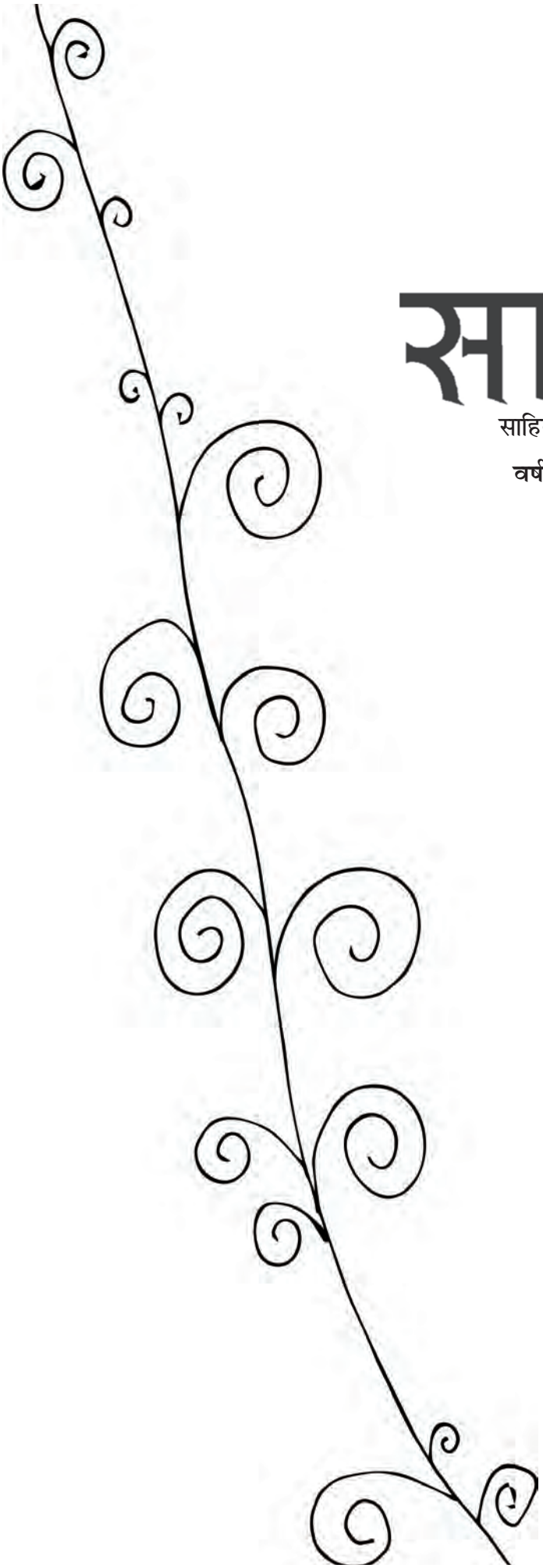

वर्तमान साहित्य

साहित्य, कला और सोच की पत्रिका

वर्ष 32, ❑ अंक 4, ❑ अप्रैल, 2015

सलाहकार संपादक

रवींद्र कालिया

संपादक

विभूति नारायण राय

कार्यकारी संपादक

भारत भारद्वाज

April 1-40_ram1.qxd 3/31/2015 4:59 PM Page 2

अंदर की बात

संपादकीय कार्यालयः
टी/101, आम्रपाली सिलिकॉन सिटी, सेक्टर 76,
नोएडा-201306 मो.: 09643890121

वितरण कार्यालयः 28, एम.आई.जी., अवंतिका-1,
रामघाट रोड, अलीगढ़-202001

Email : vartmansahitya.patrika@gmail.com
Website : vartmansahitya.com

कला पक्षः भरत तिवारी, बी-67, एसएफएस फ्लैट्स,
शेख सराय-1, नई दिल्ली-110017
आवरणः हरिपाल त्यागी

सहयोग राशिः एक प्रति मूल्यः 30/-
वार्षिकः 350/-; संस्थाओं व लाइब्रेरियों के लिए 500/-
आजीवनः 11000/-; **विदेशों में वार्षिकः** 70 डॉलर।

बैंक के माध्यम से सदस्यता शुल्क भेजने के लिए
वर्तमान साहित्य
चालू खाता संख्या नंः 85141010001260
IFSC: SYNB0008514,
सिंडीकेट बैंक, रामघाट रोड, अलीगढ़–202002

कृपया रेमिटेंस की सूचना तत्काल ई-मेल अथवा एसएमएस द्वारा ही भेजें।

सारे भुगतान मनीऑर्डर/ड्रॉफ्ट 'वर्तमान साहित्य' के नाम से संपादकीय कार्यालय के पते पर भेजे जाएं। केवल लोकल चेक ही स्वीकार किए जाएंगे।

प्रकाशक, मुद्रक, संपादक विभूति नारायण राय की ओर से, रुचिका प्रिंटर्स, दिल्ली-110032 (09212796256) द्वारा मुद्रित तथा 28, एम.आई.जी., अवतिंका-1 रामघाट रोड, अलीगढ़-202001 से प्रकाशित।

पत्रिका में प्रकाशित रचनाओं की रीति-नीति या विचारों से वर्तमान साहित्य संपादक मंडल या संपादक की सहमति अनिवार्य नहीं है। संपादन एवं संचालन पूर्णतया अवैतनिक और अव्यावसायिक।

केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा से सहयोग प्राप्त

संपादकीयः कबिरा हम सबकी कहैं 3

125वीं जयंती परः
आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की साहित्येतिहास दृष्टि क्या हिंदूवादी है? / डॉ. मुश्ताक अली 5

कहानीः
बत्तखें / दीपक शर्मा 9
अपना आदमी कौन? / सुभाष शर्मा.....11
कयास / भूमिका द्विवेदी अश्क 15

स्मृति शेषः
कोई वीरानी-सी वीरानी है / भारत भारद्वाज 18
अश्वघोष की कमी खलेगी / हेमलता महिश्वर.....20

सहवर्ती साहित्यः
पंजाबी साहित्य के 50 वर्ष / सुतिंदर सिंह 'नूर' 23

पंजाबी कहानीः
जवां मर्द / कबीर बेदी 27
कारगिल / डॉ. बलदेव सिंह धालीवाल 32
मैं तेरी पहली मुहब्बत / हरजीत अटवाल.....41
मैं तेरी पहली मुहब्बत / हरजीत अटवाल.....41
पंजाबी कविताएंः 48-52
गोलमेज 53

मीडियाः
अभिव्यक्ति की आजादी बनाम बर्बरता/ प्रांजल धर.....68

व्यंग्यः
बार बार बिहार/ सुवास कुमार 72

लेखः
दलित साहित्य का शिल्प-सौंदर्य/ डॉ. चंद्रभान सिंह यादव...75

समीक्षाः
स्लीमैन के संस्मरण / प्रेमपाल शर्मा 78

समीक्षाः
स्लीमैन के संस्मरण / प्रेमपाल शर्मा 78

स्तंभः
तेरी मेरी सबकी बात / नमिता सिंह.....78
पत्र.....83

April 1-40_ram1.qxd 3/31/2015 4:59 PM Page 3

कबिरा हम सबकी कहैं

पेशावर में आर्मी पब्लिक स्कूल के छात्रों पर हुए हमले के संदर्भ में मैंने फरवरी के अपने संपादकीय में लिखा था कि कौमों के इतिहास में कई बार ऐसे निर्णायक क्षण आते हैं जब यह कहा जा सकता है कि उसके बाद वे वही नहीं रह गई जो उसके पहले थी। 21 मार्च, 2015 को हाशिमपुरा हत्याकांड के मुकदमें में आए अदालती फैसले के बाद भारतीय राज्य के सामने भी एक ऐसा ही क्षण आ खड़ा हुआ है। आजादी के बाद के सबसे बड़े हिरासती हत्याकांड में भी राज्य उन हत्यारों को दंडित नहीं करा पाया जिन्होंने अपनी हिरासत में लेकर कई दर्जन मुसलमानों को दो नहरों के किनारे निर्ममतापूर्वक मार डाला था। यह कोई साधारण हत्यारे नहीं थे। इन्हें राज्य ने खाकी वर्दी पहनाई थी और इनको नागरिकों की जानमाल की हिफाजत करने की ड्यूटी सौंपी गयी थी। मान्य अंतरराष्ट्रीय नियमों के अनुसार अभिरक्षा में लेने के बाद किसी भी व्यक्ति के जीवन की सुरक्षा का दायित्व राज्य का हो जाता है। सामान्य शांति-व्यवस्था की तो बात ही क्या युद्धबंदियों को भी यह अधिकार हासिल है। हाशिमपुरा के मामले में इसके ठीक विपरीत हुआ। मेरठ से इन नौजवानों को पी.ए.सी. ने अपनी ट्रक में भरा और गाजियाबाद जिले की सीमा में लाकर उन्हें मार दिया। मारे जाने के लिए कई सौ मुसलमानों की भीड़ में से इनके चयन का आधार सिर्फ इतना था कि ये हट्टे-कट्टे थे और नौजवान थे।

22 मई 1987 को रात लगभग साढ़े दस बजे मुझे घटना की जानकारी हुई। शुरू में तो मुझे इस सूचना पर यकीन ही नहीं हुआ पर जब कलेक्टर और दूसरे अधिकारियों के साथ मैं पहले घटनास्थल पर पहुंचा तब मुझे अहसास हुआ कि मैं धर्मनिरपेक्ष भारतीय गणराज्य के सबसे शर्मनाक हादसे का साक्षी बनने जा रहा हूं। मैं गाजियाबाद का पुलिस कप्तान था और पी.ए.सी. ने मेरठ के हाशिमपुरा मोहल्ले से उठाकर कई दर्जन मुसलमानों को मेरे इलाके में लाकर मार दिया।

22 / 23 मई सन 1987 की आधी रात दिल्ली गाजियाबाद सीमा पर मकनपुर गांव से गुजरने वाली नहर की पटरी और किनारे उगे सरकंडों के बीच टार्च की कमजोर रोशनी में खून से लथपथ धरती पर मृतकों के बीच जीवन के सूत्र तलाशना और हर अगला कदम उठाने के पहले यह सुनिश्चित करना कि वह किसी जीवित या मृत शरीर पर न पड़े–सब कुछ मेरे स्मृति पटल पर किसी हॉरर फिल्म की तरह अंकित है। मैंने पी.ए.सी. के विरुद्ध एफ.आई.आर. दर्ज कराई और 27 सालों तक उन सारे प्रयासों का साक्षी रहा हूं जो भारतीय राज्य के विभिन्न अंग दोषियों को बचाने के लिए करते रहे हैं।

हाशिमपुरा से संबंधित मुकदमों की विवेचना कुछ ही घंटों बाद मुझसे छीनकर, तत्कालीन मुख्यमंत्री वीर बहादुर सिंह ने सी.आई.डी. को सौंप दी थी और मुझे तकलीफ से लिखना पड़ रहा है कि पहले ही दिन से सी.आई.डी. ने दोषियों को बचाने की कवायद शुरू कर दी थी। उसके बाद पिछले अट्ठाईस सालों से घिसट-घिसट कर चल रही ताफतीशी और अदालती कार्यवाहियों ने निरंतर मेरी इस धारणा को पुष्ट किया है कि भारतीय राज्य का कोई भी स्टेक होल्डर न तो घटना की गंभीरता को समझता था और न ही इस मामले में दोषियों को सजा न मिल पाने की स्थिति में एक धर्मनिरपेक्ष राज्य की बुनियादी अवधारणाओं पर पड़ने वाली चोट का उसे अंदाजा था। मैंने पेंग्विन से जल्दी ही छपकर आ रही अपनी किताब **हाशिमपुरा 22 मई** में विस्तार से अलग-अलग स्टेक होल्डर के बारे में लिखा है इसलिए यहां पर केवल संक्षेप में कुछ चीजों को याद करूंगा। दिल्ली की सीमा पर घटी इतनी बड़ी घटना के बारे में पहली बार एक छोटे-से साप्ताहिक अखबार **चौथी दुनिया** के 31 मई 1987 के अंक में खबर छपी। यह अलग बात है कि 29 मई को इस अंक के बाजार में आते ही तमाम अंग्रेजी और हिंदी के राष्ट्रीय अखबारों ने हाशिमपुरा पर ध्यान देना शुरू कर दिया। **चौथी दुनिया** के पहले चार दिन तक मैंने **नवभारत टाइम्स** में कोशिश की पर उसके संपादक राजेंद्र माथुर ने इस खबर को यह कह कर छापने से इंकार कर दिया था कि इससे पी.ए.सी. का मनोबल टूटेगा। बाद के 28 सालों भी मीडिया ने इस मामले में जिस जरूरी गंभीरता की उससे दरकार थी उससे अपने को दूर रखा। पुलिस के वरिष्ठ नेतृत्व के लिए यह मामला छवि का था और वे पूरे दम खम से प्रयास करते रहे कि किसी तरह से इस प्रकरण को दबा दिया जाय। सी.आई.डी. की तफ़्तीश एक खराब

April 1-40_ram1.qxd 3/31/2015 4:59 PM Page 4

नमूने की तरह हमारे सामने है जिसमे पहले दिन से ही दोषियों को बचाने का प्रयास किया गया। हाशिमपुरा राजनैतिक नेतृत्व के लिए भी वोट बैंक से जुड़ा एक मसला भर रहा। 1987 से लेकर अब तक कई पार्टियों की सरकारें आईं और गईं पर किसी ने भी वे सारे कदम नहीं उठाए जिनसे अपराधी दंडित किए जा सकते थे। न्यायपालिका की सक्रियता का आलम यह है कि निचली अदालत में ही मुकदमें का फैसला होने में अट्ठाईस साल लग गए। अभी हाईकोर्ट और सुप्रीम कोर्ट तो बाकी ही हैं। गरज यह है कि भारतीय राज्य के किसी भी अंग ने आजादी के बाद की सबसे बड़ी कस्टोडियल किलिंग पर अपनी जिम्मेदारी का निर्वहन नहीं किया। हत्यारों के खुलेआम छूट जाने के परिणाम कितने भयानक हो सकतें हैं मैं इसके चंद उदाहरण यहां दे रहा हूं। मुकदमें का फैसला होने के फौरन बाद एक चैनल पर चल रही बहस में मृतकों में से एक के बेटे के इस कथन पर गौर कीजिए। उसने बड़े दुःख और क्षोभ के साथ कहा कि जब उसके मृतक बाप को पुलिस उठा कर ले गई वह केवल चार वर्ष का था। गरीबी के कारण उसकी पढ़ाई-लिखाई नहीं हो सकी और उसे कोई ढंग का रोजगार नहीं मिल सका। इस फैसले के बाद न्याय की उसकी रही-सही उम्मीद भी खत्म हो गई है। ऐसे में अब अगर वह आतंकवादी बन जाए तो उसका क्या कसूर है। लखनऊ में 29 मार्च की एक गोष्ठी में मुझे भाग लेने का मौका मिला जिसमें दो वक्ताओं ने खुलेआम मुसलमानों से हथियार उठाने की अपील की। सौभाग्य से ज्यादातर मुस्लिम वक्ताओं और श्रोताओं ने सख्ती के साथ इस विचार का विरोध किया और कहा कि भारतीय संविधान और व्यवस्था में ही हमें मिलकर ज्यादती से लड़ना होगा। ये उदाहरण यह समझाने के लिए काफी हैं कि यदि पीड़ितों को इनसाफ नहीं मिला तो उसके परिणाम कितने गंभीर हो सकते हैं। हमने पहले भी 1984 के सिक्ख दंगों और बाबरी मस्जिद ध्वंस के बाद दोषियों को दंडित करने में राज्य की विफलता के फलस्वरूप सैकड़ों सिक्ख और मुसलिम नौजवानों को आतंकवाद की राह में जाते हुए देखा है। इसलिए जरूरी यह है कि हाशिमपुरा कांड की फिर से जांच कराई जाए और समयबद्ध तरीके से दोषियों को दंडित किया जाएं।

पिछले एक महीने में मेरे दो आत्मीय-तुलसीराम और विजयमोहन सिंह नहीं रहे। तुलसीराम बनारस हिंदू विश्वविद्यालय में बी.ए. में मेरे सहपाठी थे और चार दशकों से अधिक समय तक उनके साथ मेरा एक खास तरह का संबंध बना रहा। मुलाकातें तो कम होतीं थीं पर टेलीफोन पर एक-दूसरे की जानकारियां मिलती रहती थीं। कुछ वर्षों पूर्व जब उनकी आत्मकथा का पहला हिस्सा **मुर्दहिया** छपा तो लोगों का ध्यान एकदम से उसकी तरफ गया। अपनी निश्छलता, साफगोई और कहन के तरीके ने इस किताब को छपते ही हिंदी की दलित आत्मकथाओं में सबसे महत्वपूर्ण बना दिया। मार्क्सवादी पृष्ठभूमि होने के कारण उनका स्वर बहुत ही वस्तुपरक और किसी भी तरह की अनावश्यक तल्खी से दूर है। यही चीज **मुर्दहिया** और हाल में छपे दुसरे खंड **मणिकर्णिका** को हिंदी की अन्य दलित आत्मकथाओं से विशिष्ट और भिन्न बनाती है। पिछले कई वर्षों से डायलिसिस पर चल रहे और असाध्य रोगों से पीड़ित तुलसीराम की जिजीविषा मुझे चकित करती रही है।

विजयमोहन सिंह से मेरी जान-पहचान बहुत कम थी पर जब वे हिंदी विश्वविद्यालय वर्धा के आवासीय लेखक बन कर आए, उनसे कुछ ऐसा संबंध बना कि लगता था हम वर्षों से एक-दूसरे को जानते रहें हैं। उन्हें एक खास अंदाज में विश्वविद्यालय के प्रांगण में टहलते हुए और नागार्जुन सराय के एक खास स्थान पर बैठे देखते रहने की इस कदर आदत पूरे विश्वविद्यालय परिवार के अन्य सदस्यों के साथ मुझे भी पड़ गई थी कि उनके वहां से जाने के बाद भी आंखें बरबस उन्हें वहीं तलाशती रहती थीं। वर्धा और दिल्ली में उनके साथ बिताई शामें याद रहेंगी। देश दुनिया में जो कुछ लिखा जा रहा था उससे अपने को अपडेट रखने वाले विजयमोहन सिंह से बाते करना हमेशा सुख देता था। जिंदादिल और स्वाभिमानी विजयमोहन सिंह पर विस्तार से मैं अलग से लिखूंगा। इन दोनों को वर्तमान साहित्य परिवार की तरफ से मेरी श्रद्धांजलि।

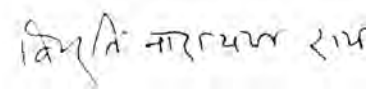

लेखकों से अपील

कृपया रचनाएं यूनीकोड (संभव हो तो मंगल या कृतिदेव फांट) में ई-मेल द्वारा भेजें। साथ में अपना पता, फोन नंबर एवं ई-मेल भी भेजें।

विशेष परिस्थितियों में ही डाक से प्राप्त रचनाएं स्वीकृत की जाएंगी। हमारा प्रयास रहता है कि एक महीने में स्वीकृति/अस्वीकृति की सूचना भेज दी जाए। यदि एक महीने में सूचना प्राप्त न हो तभी पूछताछ करें।

पुस्तक समीक्षा के लिए हम स्वयं पुस्तकें चुनकर समीक्षकों को भेजते हैं।

कृपया बिना आमंत्रण समीक्षा न भेजें!